तुलसी का स्वभाव एवं व्यक्तित्व

डॉ0 शंकर शरण तिवारी, 38, सी.पी. मिशन, कम्पाउण्ड, झाँसी। पिन–284003
फोन : 9795127788

गोस्वामी तुलसीदास जी का स्वभाव एवं व्यक्तित्व, तुलसीदास की प्रकृति या उनके स्वभाव के विषय में विचार करने से पूर्व यह जानना उचित होगा कि प्रकृति या स्वभाव का क्या अर्थ है और इसके अन्तर्गत कौन–कौन से गुण होते हैं? वैसे तो 'प्रकृति' शब्द अनेकार्थी है, पर इसका एक अर्थ 'स्वभाव' भी है। गीता में 'प्रकृति' का अर्थ 'स्वभाव' करते हुए प्रकृति की दुर्निवारिता का प्रतिपादन यह कहकर किया गया है कि –

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

(3 / 33)

इसके अतिरिक्त **'स्वभावोहि दुरतिक्रमः'** का आशय भी यही है कि स्वभाव अपरित्याज्य है। नीति–वेत्ताओं ने भी पर्याप्त तर्क–वितर्क करके यह निश्चित कर लिया है कि **'या यस्य प्रवृत्तिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते।'** अर्थात स्वभावजन्य जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है उसे कोई नहीं छोड़ता। इस परिप्रेक्ष्य में एक बुंदेलखण्डी कहावत उल्लेखनीय है –

जी कौ जौन सुभाउ जाय न जी सों। नीम न मीठी होइ खाय गुर घी सों॥

तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में यही घोषणा करते हैं –

मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।

(1 / 7 / 4)

तुलसीदास जी का स्वभाव भी ऐसा ही अमिट था जो अनेक विघ्न–बाधाओं के पश्चात् भी उन्हें परमार्थ–पथ की ओर सतत् अग्रसर करता रहा।

स्वभाव का एक अन्य पर्याय 'शील' भी प्रचलित है, जिसे सामान्यतः 'चरित्र–समष्टि' के बोधक के रूप में स्वीकृत किया जाता है। अमरकोश तो 'शील' और 'स्वभाव' में भेद न करके निर्देश करता है – **'शीलो स्वभावो।'** अर्थात शील स्वभाव ही है। स्वभाव के सामान्यतः दो रूप होते हैं – (1) साधु स्वभाव और (2) असाधु स्वभाव। इन्हीं दोनों भेदों को गीता में दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के रूप में विस्तार से समझाया गया है। साधु स्वभाव तथा असाधु प्रवृत्ति वाले दोनों की गतियाँ भी पृथक–पृथक होती हैं – **दैवी**

सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। (गीता 16/5)

भले ही तुलसीदास जी का अधिकांश जीवन–वृत्त अज्ञात हो, पर उनका स्वभाव उनके काव्य में दिखाई देता है। यहाँ कतिपय अन्तःसाक्ष्य अवलोकनीय है –

जानकी न तप-खपु कियो, न तमाइ जोग, जाग न विराग, त्याग, तीरथ न तनको।
भाई को भरोसो न खरो-सो बैरु बैरीहू सों, बलु अपनो न, हितू जननी न जनको।।
लोकको न डरु, परलोकको न सोचु, देवसेवा न सहाय, गर्बु धामको न धनको।
रामही के नामतें जो होई सोई नीको लागै, ऐसोई सुभाउ कछु तुलसीके मनको।।

(कवितावली 7/77)

इसी क्रम में वे आगे और भी लिखते हैं –

रावरो कहावौं, गुनु गावौ राम! रावरोइ, रोटी द्वै हौं पावौं राम! रावरी हीं कानि हौं।
जानत जहानु, मन मेरेहूँ गुमानु बड़ो, मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं।।
पाँचकी प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई, तुम्ह अपनायो हौं तबै हीं परि जानिहौ।
गढ़ि गुढ़ि छेलि-छालि कुंदकी-सी भाई बातैं, जैसी मुख कहौं, तैसी जीयँ जब आनिहौं।।

(कवितावली 7/63)

भाव यह है कि तुलसी न जापक हैं न योगी, न विरागी न त्यागी, न तीर्थ–सेवी हैं, उन्हें लोक–परलोक का भय या सोच नहीं है। उन्हें राम के प्रभाव से सम्पन्न होने वाला परिणाम रुचिकर प्रतीत होता है। उनका कार्य केवल एक है – **राम-गुणगायन और सर्वतोभावेन उन्हीं राम के प्रति एकनिष्ठ अभिमान।** इस परिप्रेक्ष्य में भक्त सुतीक्ष्ण का श्रीराम–प्रेम का अभिमान भी तुलसी के स्वभाव का द्योतक है यथा –

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।

(मानस 3/11/21)

विनयपत्रिका जो 'मानस' से परवर्ती रचना कही जाती है – में भी जिस स्वभाव की कल्पना या याचना तुलसीदास ने अपने लिए की है, वह वस्तुतः उनका सिद्ध अथवा पूर्वलब्ध स्वभाव ही है –

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो।। (1)
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।। (2)
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो।। (3)

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो।। (4)

(विनयपत्रिका 172)

स्वभाव के अन्तर्गत तुलसी ने अपने गुण या गुण विशेष की गणना इस प्रकार की है – **''है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग''** और वह एक गुण है भक्ति अथवा राम नाम का स्मरण या जप –

काम यहै, नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।

(विनयपत्रिका 76)

इस प्रकार ऐसा लगता है कि तुलसीदास की भक्ति या राम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही उनके स्वभाव का सार–सर्वस्व है। इसी भक्ति की विराटता से अनेक स्तुत्य माननीय गुण निसृत होते हैं, जिनकी गणना इस प्रकार की जा सकती है –

तुलसी संतोषी हैं, निराकांक्षी हैं, परहितपरायण और नियम निर्वहन करने वाले हैं, उनमें क्रोध का नितांत अभाव है, अभिमान नहीं है, पर एक अप्राकृत अभिमान उनमें अवश्य है और वह है कि मैं श्रीराम का पुजारी हूँ। उनका मन शीतल, परगुणगानरत, दुःख और सुख की अनुभूति से परे है। इन्हीं समस्त विशेषताओं को उनके स्वभाव के अंतर्गत माना जा सकता है। श्रीराम भक्ति–वरण करने के कारण उन्हें एक अभूतपूर्व दैन्य प्राप्त होता है जो उनके व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्व है। उनके स्वभाव के इन गुणों को उनके काव्य में निम्नांकित प्रकार से देखा जा सकता है।

1. **दैन्य भाव** -

भक्तिप्रधान व्यक्तित्व में अहंकार नहीं रह सकता। यही कारण है कि तुलसीदास सर्वत्र अपनी लघुता अथवा दीनता का व्याख्यान करते हैं। वे अपने को 'सठ', अज्ञानी, लघुमति, धींग धरमध्वज, धंधक, भोरी, विमूढ़, खोटो आदि रूपों में प्रस्तुत करते हैं, पर ये शब्द श्रीराम के प्रति उनके दैन्यभाव के सूचक हैं। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किया –

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो?
हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार, परी न छार, मुह बायो। (2)
महिमा मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे, खिनु-खिनु पेट खलायो।

(विनयपत्रिका 276)

उन्होंने जोर देकर कहा है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि तुलसीदास जी सचमुच द्वार–द्वार डाँट फटकार सुनते फिरा करते थे। वे आगे लिखते हैं – दैन्यभाव जिस उत्कर्ष का गोस्वामीजी में पहुँचा है, उस उत्कर्ष का और किसी भक्त कवि में देखने को नहीं मिलता है यथा –

खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसीकी निलजई।।(5)

(विनयपत्रिका 252)

भाव यह है कि जहाँ पर इस प्रकार की बातें तुलसी द्वारा कही जायें यह समझ लेना चाहिए कि यह उनके स्वभाव का वर्णन नहीं है, बल्कि कार्पण्य निवेदन है। वैसे वे प्रकृति से ही विनम्र हैं। उन्हें अपने से छोटा और राम से बड़ा कोई दिखाई ही नहीं देता –

रामसों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो।
रामसों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो।।(2)

(विनयपत्रिका 72)

2. **परहितपरायणता** -

मनुष्य श्रेष्ठतम जीव होने पर भी सामान्यतः स्वार्थी होता है। तुलसी का भी कथन है – **स्वारथ मीत सकल जग माहीं।** परन्तु धर्म के दृष्टिकोण से विचार करने वाले के लिए सच्चा स्वार्थ है परहित सम्पादन। स्वयं श्रीरामजी ने कहा है –

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधिमाई।

(मानस 7/41/1)

यही गुण या धर्म समाज के लिए उपयोगी बन जाता है और ऐसा व्यक्ति समाज के लिए वरेण्य एवं अमर बन जाता है। तुलसीदास ने ''श्रीरामचरितमानस'' का वर्णन स्वान्तः सुखाय किया है, पर यह स्वान्तः सुख समाज के व्यापक हित में पथप्रदर्शक हो गया है। यही कारण है कि मानस की समाप्ति पर फलश्रुति इस प्रकार से निर्दिष्ट है –

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।

(मानस अन्तिम श्लोक)

निष्कर्ष यह है कि विश्व की संपूर्ण पीड़ित मानवता के लिए तुलसी समर्पित थे। डा0 राम निवास शर्मा जैसे प्रगतिवादी तुलसी को कवितावली के निम्नांकित पद के परिप्रेक्ष्य में मानवीय करुणा का अन्यतम कवि घोषित करते हैं –

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिकको बनिज, न चाकर को चाकरी।

जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी?

(कवितावली 7/97)

3. **संतोषीप्रवृत्ति** -

तुलसी का कथन है कि बिना संतोष के काम या कामनाएँ समाप्त नहीं होतीं –

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।

(मानस 7/90/1)

भक्तिमान हृदय की एक विशेषता संतोष भी है। गीता में इसे "संतुष्टो येनकेनचिद्" कहा है। तुलसी 'यथालाभ संतोष' के सदा पक्षधर हैं और उसमें संतुष्ट हैं जो उन्हें श्रीराम जी के द्वारा दे दिया जाता है। उनके लिए राम कृपा से चने के कुछ दानों की प्राप्ति चार–फल के समान है। उनके अनुसार यह जीवन भयंकर और कष्टकारी है, पर संतोषी वृत्ति से व्यावहारिक रूप से यह सुखकारी अवश्य हो सकता है –

सम-संतोष-दया-बिबेक तें, ब्यवहारी सुखकारी। (4)

(विनयपत्रिका 121)

4. **अमानी** -

जहाँ भक्ति है, वहाँ अमानित्व है। भक्त सबको आदर देता है, पर स्वयं उसमें अभिमान के लिए कोई अवकाश नहीं होता। यह अमानित्व ज्ञानी के लिए भी आवश्यक है। तुलसी ने स्वयं लिखा है –

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।

(मानस 3/15/7)

इसी प्रकार भक्त के लिए भी समझना चाहिए। ऊपर (1. दैन्य भाव) जो विनयपत्रिका के पद सं0 72 में सांकेतिक है, उसके अनुसार तुलसी विगतमानी थे। यही कारण है कि वे सम्पूर्ण चर–अचर से विनय करते हुए वरदान की याचना करते हैं। हाँ, तुलसी के साहित्य में अवगाहन करने पर एक विशेष प्रकार का अभिमान उनमें प्रतीत होता है ऐसा पहला अभिमान उन्हें शिवजी की कृपा से अपने कवि होने का है –

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी।।

(मानस 1/36/1)

दोहावली में भी वे अपने एक गुण सम्पन्न होने का अभिमान अवश्य रखते हैं। पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने एक ऐसा ही अप्राकृत अभिमान तुलसी के व्यक्तित्व में पाया है –

रावरो कहावौं, गुनु भावौं राम! रावरोइ,
रोटी द्वै हौं पावौं राम! रावरी हीं कानि हौं।

जानत जहानु, मन मेरेहूँ गुमानु बड़ो,
मान्यों मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥

(कवितावली 7/63)

राम जैसे प्रियतम पर उनका इस प्रकार का गुमान कहाँ तक संगत है, यह निर्वहन का विषय नहीं, बल्कि उनके निश्चल प्रेम का प्रतीक है। खलों को काक और स्वयं को कोयल कहने में भी उनका उक्त प्रकार का स्वाभिमान झलकता है –

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥

(मानस 1/9/1)

5. **विरक्त और फक्कड़** -

तुलसी के अन्तःसाक्ष्य से दाम्पत्य जीवन का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। आलोचकों के इस विषय में परस्पर विरोधी भाव हैं। कुछ उन्हें गृहस्थ स्वीकार करते हैं और बाद में उन्हें विरक्त के रूप में स्वीकारते हैं। कुछ आलोचक कहते हैं कि उन्होंने कभी विवाह नहीं किया और आजीवन विरक्त और फक्कड़ रहे। इस विषय में कुछ साक्ष्य मिलते हैं, यथा –

जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।

(विनयपत्रिका 83)

परयो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय,
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।

(हनुमान बाहुक 40)

इसमें उनके गृहस्थ जीवन में होने का आभास मिलता है। इसके विपरीत निम्नलिखित साक्ष्य उनके विरक्त जीवन की पुष्टि करते हैं –

सेइ साधु गुरु समुझि राम भगति थिरताइ।
लरिकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाई॥

(दोहावली 140)

ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।

(विनयपत्रिका 76)

इस विवाद में न पड़कर हम यह मानकर चलेंगे कि उनका अधिकांश जीवन विरक्ति में व्यतीत हुआ था और यदि ऐसा न होता तो वे वैराग्य युक्त भक्ति का प्रतिपादन कैसे करते। कवितावली में उनका उक्त प्रकार का वैराग्य और फक्कड़पन स्पष्टतः व्यक्त है –

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
माँगि कै खैबो, मसीतको सोइबो, न लैवेको एकु न दैवेको दोऊ।।

(कवितावली 1/106)

इस परिप्रेक्ष्य में श्रीरामचरितमानस राष्ट्रीय समिति की स्मारिका के अंक 19 (सन् 2012–13) में पृष्ठ संख्या 87 से 90 पर प्रकाशित लेख 'तुलसी जन्मभूमि' पठनीय है, जिसके अनुसार तुलसी की जन्मभूमि राजापुर (बाँदा) है तथा गृहस्थ जीवन के पश्चात ही उन्होंने संन्यास लिया था।

6. **विनोदी और परिहासप्रिय** -

तुलसी जैसे समाजद्रष्टा, ऋषि और महाकवि से विनोद और परिहास की आशा नहीं करनी चाहिए। फिर भी उनके काव्य में अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ उन्होंने अपने इस स्वभाव की व्यंजना की है। श्रीराम नरेश त्रिपाठी को तुलसी बड़े विनोद–प्रिय भी जान पड़ते हैं। उनका यह हास–परिहास देवताओं के विषय में व्यक्त हुआ है और राम तथा ऋषि–मुनि भी इससे सर्वथा बच नहीं सके हैं। सर्वप्रथम बरवै रामायण में उन्होंने राम के साँवले रूप की जो चुटकी ली, वह इस प्रकार है –

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देख आपनि मूरति सिय के छाँह।।

(बरवै0 बालकाण्ड 14)

भगवान शंकर तुलसी के यद्यपि माता, पिता और गुरु हैं फिर भी उनकी क्रिया को लेकर उन्हें आपत्ति है। उनका यह व्यंग्य अवलोकनीय है –

कैसे कहै तुलसी वृषासुरके बरदानि,
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहरकी।।

(कवितावली 7/170)

भाव यह है कि जिनकी आदत है कि वह अमृत छोड़कर जहर पीता है, उससे तुलसी जैसा आर्त–विनय करे। ऋषि–मुनियों की आर्त पुकार पर अवतार होता है और इन ऋषि–मुनियों की एक विशेषता है कि वे सभी एकाकी हैं, तपी हैं, त्यागी हैं, उनके लिए प्रमदा सब दुःख खानि है ही, पर विन्ध्याचल के तपोव्रतधारी, ऋषि–मुनि राम की विलक्षण क्षमता से अभिभूत होकर यह कामना करने लगे कि अब गौतम पत्नी अहिल्या की तरह सभी शिलाएँ चन्द्रमुखी, रमणी, रूप धारिणी हो जाएगी और इस प्रकार हमारा संकट समाप्त हो जाएगा –

बिंधके बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिवृंद सुखारे।।

ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू! करुना करि काननको पगु धारे।।

(कवितावली 2/28)

विनोदप्रिय तुलसी गौतम का गौना करा देते हैं, उन्हें खसम (पति) का अभिमान दे देते हैं। इसी प्रकार राम विवाह के अवसर पर शिव, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र के अनेक नेत्रों को लेकर विनोद प्रस्तुत कर दिया है –

रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना।।
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं।। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।।

(मानस 1/317/6–7)

7. **पाखण्ड, आडम्बर और दम्भ विरोधी** –

तुलसी धर्म एवं न्याय के पक्षधर थे, अतः पाखंडियों, दम्भियों तथा आडम्बरी व्यक्ति उन्हें प्रिय नहीं थे, क्योंकि ये समाज के विभिन्न स्तरों पर उसे विकृत तथा भ्रमित करने में संलग्न थे। एक तरफ ऐसे योगमार्गी थे, जो योग का छद्म प्रतिपादन करके भक्तिमार्ग का विरोध कर रहे थे। दूसरी तरफ ऐसे दम्भी लोग थे जो अलख–अलख का मात्र उच्चारण करके साधनाहीन अवस्था में समाज को ठग रहे थे। उनके समय में जन सामान्य की बड़ी दुर्दशा थी। वह भूतों की पूजा करता था, अपनी भौतिक सम्पूर्ति के लिए बहराइच जाता था वाममार्गी, शाक्त, प्रेमाख्यानक कवि भी अपनी–अपनी सीमाओं के कारण उन्हें नहीं रुचे थे। तुलसी का स्वभाव इनसे समझौता नहीं कर सका, यथा –

गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,

(कवितावली 7/84)

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जप नीच।।

(दोहावली 19)

तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत।।

(दोहावली 65)

लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ।।

(दोहावली 496)

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं बेद पुरान।।

(दोहावली 19)

8. **देशभक्ति सम्पन्न –**

तुलसी के व्यक्तित्व में संकीर्ण व्यक्तिवाद और रोमांटिक स्वच्छन्दतावाद नहीं था। वे देशभक्ति से आपूरित थे। अपने देश तथा इसके सांस्कृतिक सारभूत तत्व भक्ति के प्रति उनका राग इन पंक्तियों में दृष्टव्य है –

भलि भारतभूमि, भलें कुल जन्मु, समाजु सरीरु भलो लहि कैं।
जो भजै भगवानु सयान सोई। 'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै।

(कवितावली 7/33)

आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि तुलसी ने अपने कृतित्व के माध्यम से भारतीय जनता की भावनात्मक एकता दृढ़ की।

9. **संघर्षशील –**

अपने सामयिक जीवन और परिवेश से तुलसी क्षुभित थे। उन्हें पग–पग पर विरोधियों का सामना करना पड़ा – कटूक्तियाँ सुननी पड़ीं। किसी ने उन्हें कठमलिया कहा, किसी ने अज्ञानी, किसी ने धूर्त तो किसी ने अवधूत। रामकथा को जन भाषा के माध्यम से जनसुलभ करने को लेकर काशी में उनके विरुद्ध पंडितों का आक्रोश था। उनका विरोध और तिरस्कार किया गया। उन्हें इसका अत्यन्त क्षोभ था कि भूतभावन की पवित्र नगरी में खल प्रचार–प्रसार को प्राप्त हो रहे हैं और साधुओं के ऊपर संकट है –

करमठ कठमलिया कहैं ग्यानी ग्यान बिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो राम दुआरें दीन॥

(दोहावली 99)

फलैं-फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल-पल
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं।

(कवितावली 7/171)

खल परिहास होइ हित मोरा

(मानस 1/9/1)

की मान्यता वाले तुलसी विपरीत परिस्थितियों के विरोध में केवल अपने विभिन्न आराध्यों – शिव, हनुमान तथा राम से सुरक्षा की याचना ही कर सकते थे –

गाँव बसत बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।

तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे।

(विनयपत्रिका 8 / 3–4)

10. **सौन्दर्य-प्रेमी एवं कला मर्मज्ञ -**

तुलसी की सौन्दर्य चेतना पर आलोचकों द्वारा पर्याप्त विचार किया जा चुका है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – 'यदि कहीं सौन्दर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रेरणा शील है तो हर्ष–पुलक ..... तुलसीदास के हृदय में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान है।' इस कथन से तुलसी की सौन्दर्य चेतना का सुपरिचय प्राप्त हो जाता है। डॉ0 नगेन्द्र ने इसी संदर्भ में तुलसी के सौन्दर्यपरक का एक बिम्ब इस प्रकार से प्रस्तुत किया –

सुन्दरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।

(मानस 1 / 230 / 7)

उनकी कला–चेतना के संदर्भ में निम्नांकित दोहा एवं चौपाई दृष्टव्य है –

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराम के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल।।

(मानस 1 / 287)

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे।।

(मानस 1 / 288 / 1)

उपर्युक्त पूरा प्रकरण मननीय है। हिन्दी साहित्य में ऐसी कला चेतना कदाचित ही उपलब्ध हो सके। आलंकारिक दृष्टि से भी उनकी कलात्मकता ऐसे प्रसंगों की सृष्टि कर सकी है जहाँ काव्यशास्त्र का अलंकार विभाग मौन धारण किए हुए है। संभवतः इसी विशेषता से अभिभूत होकर कविवर हरिऔध ने यह घोषणा की थी –

कविता करि कै तुलसी न लसै, कविता लसि पा तुलसी की कला।।

अन्तःसाक्ष्य 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं... (मानस 1 / मंगलाचरण 7)' से यह स्पष्ट है कि तुलसी ने संस्कृत साहित्य का गंभीर अनुशीलन किया था। वेद, उपनिषद, दर्शन, पुराण आदि में उनकी गहरी पैठ थी। नाटक, छन्दशास्त्र, काव्य, इतिहास, ज्योतिष, संगीत और अंकगणित में भी वे मर्मी विद्वान थे। विभिन्न भाषाओं पर उनके अधिकार होने की प्रशंसा शीर्षस्थ आलोचकों द्वारा की जा चुकी है। विद्वता के साथ कवित्व शक्ति की एकत्र उपस्थिति सचमुच अभूतपूर्व थी। अपने स्वभाव की इसी विलक्षणता के कारण उन्हें अपने युग में ही वाल्मीकि के समान महामुनि माना गया, जो उनकी रामभक्ति अथवा राम–नाम प्रभाव के कारण संभव हुआ। ऐसे स्वभाव का महापुरुष अनन्त पुण्य से ही जगत को प्राप्त होता है। ऐसे महान संत राम भक्त कवि को शत्–शत् नमन।

जीवन में स्वप्न का महत्व

पं0 डॉ0 रामगोपाल तिवारी 'मानस रत्न',
बाँदा (उ0प्र0) फोन :

हमारे जीवन में चार अवस्थाएँ होती हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त और तुरीय इन चार अवस्थाओं में से मैं स्वप्नावस्था पर विचार केन्द्रित करना चाहता हूँ। स्वप्नावस्था को सामान्यतया झूठ और भ्रम के अर्थ में ही लिया जाता है –

जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागे जथा 'सपन' भ्रम जाई।।

(1/111/2)

'सपनें' जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई।।

(4/7/20)

'सपनें' होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ।।

(2/92)

स्वप्न क्या है? क्योंकि जब कोई व्यक्ति 3 बजे रात में सोते समय स्वप्न देखता है कि मैं नदी में डूबा जा रहा हूँ तो वह बहुत घबड़ाता है, लेकिन जब 5 बजे सुबह उसकी नींद खुली तो, अपने को बिस्तर में सुरक्षित पाकर चैन की साँस लेता हुआ राहत महसूस करता है कि वो नदी में डूबने वाला संकट स्वप्न (झूठा) था। नदी में डूबने वाली घटना पर यदि झूठ या सत्य की दृष्टि से विचार करें तो निष्कर्ष यही निकलेगा कि 3 बजे रात में नदी में डूबने वाली घटना सत्य थी, जबकि 5 बजे सुबह वही घटना झूठ हो गई मतलब स्वप्नकाल में स्वप्न सत्य होता है और जाग्रत अवस्था आते ही स्वप्न झूठा हो जाता है। कोई भावुक भक्त स्वप्न में अपने इष्ट स्वामी को देख रहा था, उसकी भावना क्या कह रही थी –

सपने में स्वामी मिले मुझसे रहे बतराय।
आँख न खोलूँ डरपता मत सपना होइ जाय।।

मतलब स्वप्नकाल के सत्य का सुखभोग। जैसे कोई भिखारी स्वप्न में राजा हो गया। यदि किसी से पूछा जाए कि जो भिखारी स्वप्न में राजा बन गया उसको कुछ लाभ हुआ कि नहीं? ज्यादातर लोग कह देते हैं कि कोई लाभ नहीं हुआ, पर मैं तो कहता हूँ कि लाभ कैसे नहीं हुआ? लाभ हुआ, अरे स्वप्न काल में ही सही, लेकिन जितनी देर तक वह स्वप्नावस्था में राजा बना रहा उतने समय तक तो राजा होने का सुख लाभ तो ले ही लिया। 'मानस' का शब्द यही तो भाव व्यक्त कर रहा है –

'सपने' होइ भिखारी नृप रंक नाकपति होइ।
जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

(2 / 92)

सपने होइ भिखारी नृप एक भिखारी सपने में राजा बन गया जिसको 'जागे हानि न लाभ कछु' मतलब जाग जाने पर हानि–लाभ नहीं हुआ, लेकिन यदि वह न जागे तब तो लाभ होना ही सिद्ध हो रहा है। एक स्थिति और कोई व्यक्ति 3 बजे रात में स्वप्न देखकर चिल्ला रहा है कि मैं नदी में डूब रहा हूँ। कोई बचाओ–बचाओ लेकिन उसी समय उसी के पास बैठा हुआ कोई दूसरा व्यक्ति जाग रहा है। तो वह हँस कर अन्य सब लोगों से बता रहा है कि यहाँ न कोई नदी है, न कोई बाढ़ है, न ही कहीं डूबने का कोई संकट है। ये तो झूठ ही चिल्ला रहा है कि नदी में डूब रहा हूँ। इसका मतलब कि स्वप्न की घटना (जाग्रत और स्वप्न) अवस्था के सापेक्ष भी सत्य या झूठ है। गोस्वामी जी विनय–पत्रिका में लिखते हैं – स्वप्नावस्था में डूबने वाले को बचाने के लिए नाव की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसको जगा देना ही सही उपाय है –

सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै॥

(121)

एक समस्या और है स्वप्नावस्था में दृश्य और दृष्टा दोनों ही झूँठे हैं, क्योंकि बिस्तर में सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न का दृष्टा बनकर नदी की तरंगों के थपेड़े से जूझ रहा है तो वही व्यक्ति बिस्तर में भी और नदी में भी, दो जगह, जिसमें एक सत्य और एक झूठ, इसी प्रकार स्वप्न का दृश्य भी एक तरफ **'सुभग सेज'** और दूसरी तरफ **'बारिधि बूड़त'** ये तो –

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

(2 / 93 / 2)

मतलब एक विचित्र गुत्थी है कि यदि कोई एक शब्द सत्य या झूठ में उत्तर पाने की शर्त पर यह पूछे कि स्वप्न सत्य है या झूठ तब तो उत्तर देना असम्भव होगा, क्योंकि समय और अवस्था के सापेक्ष स्वप्न सत्य भी है और झूठ भी है। श्रीरामचरितमानस में लगभग सभी स्वप्न सत्य ही हुए हैं –

सुनहि मितु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि॥
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥

(1 / 72)

देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥

(2 / 157 / 6)

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा।।

(2 / 226 / 3)

सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए।।
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सास आन अनुहारी।।
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन।।
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।।

(2 / 226 / 3–7)

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।

(5 / 10 / 7)

परन्तु स्वप्न को निरपेक्ष भाव से सत्य या झूठ कुछ भी कह देना विवादित है, क्योंकि जहाँ –

मोहनिसाँ सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।

(2 / 93 / 2)

स्वप्नकाल की स्वप्नावस्था वालों के लिए स्वप्न सत्य है वहीं –

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।

(2 / 93 / 3)

के लिए स्वप्न झूठा भ्रम ही है। इसीलिए भगवती उमा ने जब भगवान शंकर से उनके निजी अनुभव की बात पूछी तो भगवान शंकर ने संसार को न तो सत्य कहा न झूठ –

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

(3 / 39 / 5)

भगवान शंकर ने जगत को सपना कहकर यह बताया कि जो लोग स्वप्नावस्था में हैं उनके लिए संसार (सपना) झूठ है। यहाँ पर जगत तो विवादित है किसी के लिए सत्य और किसी के लिए झूठ है, परन्तु भगवान शंकर के अनुभव वाक्य में एक तथ्य निर्विवादित है वह है 'सत हरि भजनु' मतलब 'हरि भजन' सत्य है और सत्य रहेगा। हरि भजन त्रिकाल सत्य है हमें अपने हित के लिए विवादित जगत को छोड़कर निर्विवाद हरि भजन में लग जाना चाहिए।

जीवन में स्वप्न क्यों दिखाई पड़ते हैं। कभी–कभी तो हमारी इच्छा और स्वभाव के विपरीत भी स्वप्न दिखाई पड़ जाते हैं। स्वप्न ही हमारी अन्तर्वृत्तियों का सच्चा परिचय है। श्रीरामचरितमानस के सिद्धान्त के अनुसार हमारे जीवन में जाग्रत अवस्था का महत्व नहीं है हमारी अन्तर्वृत्तियों की विश्वसनीयता के लिए

स्वप्न ही सच्ची कसौटी है। कोई पुरुष एक पत्नीव्रत में खरा है इसके लिए राम जी स्वप्न को ही प्रमाण बताते हैं –

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।।

(1/231/6)

कोई स्त्री उत्तम पतिव्रता है इसके लिए भी स्वप्न ही कसौटी है –

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।

(3/5/12)

अन्तःकरण विकार रहित है इसके लिए माँ सुमित्रा का आदेश लक्ष्मण के लिए स्वप्न के लिए ही है –

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।

(2/75/5)

'दसरथ धन लखि धनद लजाई' वाले अयोध्या के कोष की सुरक्षा के लिए श्री भरत जी ने ऐसे रक्षक नियुक्त किए जिन्होंने स्वप्न में भी कभी परधन की चोरी न की हो –

अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले।।

(2/186/6)

भक्त सुतीक्ष्ण जी की अनन्यता की कसौटी भी स्वप्न है –

मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक।।

(3/10/2)

पिता आश्रित पुत्र का लक्षण भी स्वप्न आधारित है –

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसरा धर्मा।।

(7/87/4)

निशाचरों के अन्दर सद्गुण शून्यता भी स्वप्न के लक्षण से प्रमाणित है –

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया।।

(1/181/1)

नहि हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना।।

(1/183/8)

आठवीं प्रकार की भक्ति के लिए भी पर दोष न देखने के लिए स्वप्न ही कसौटी है –

आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।

(3/36/4)

गोस्वामी जी शम्भु भवानी की कृपा को भी स्वप्न की कसौटी से प्रमाणित करते हैं –

सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होइ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ।।

(1/15)

श्रीराम जी की शरणागत कृपालुता भी स्वप्न से प्रमाणित है –

जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी।।

(1/29/6–7)

गुरु कृपा की सुरक्षात्मक विश्वसनीयता भी स्वप्न की कसौटी से प्रमाणित है –

माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू।।

(2/315/2)

कोल भील भी स्वप्न में भी धर्माचरण न करने की बात कहते हैं –

सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।।

(2/251/6)

श्री भरत जी के स्वार्थी न होने की कसौटी भी स्वप्न से प्रमाणित है –

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।।

(2/289/7)

हमारे जीवन में भी इस स्वप्नावस्था के एक लक्षण का सबसे बड़ा एक ऐसा अलौकिक लाभ है, जिसके लिए ही हम सम्पूर्ण जन्मों को न्योछावर करके उसी आशा के साथ रोज सो जाते हैं –

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ।।
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई।।

(2/124/1–2)

लोग बुराई करें, और आप दुःखी हो जायें, लोग तारीफ करें, और आप सुखी हो जायें।
समझो आपके सुख–दुख का स्विच लोगों के हाथ में है,
कोशिश करें ये स्विच आपके हाथ में हो।

भयउ ईस मन छोभु बिसषी

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि 'संभु तब जागे'।।
'भयउ ईस मन छोभु बिसेषी'। नयन उघारि सकल दिसि देखी।।
सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका।।
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा।।

(1/87/3–6)

गोस्वामी जी लिखते हैं कि –

1. 'भयउ ईस मन छोभु बिसेषी'

अर्थात् ये जो क्षोभ है वह हम जड़ जीव वाला नहीं है बल्कि विशेष है।

2. इस क्षोभ की महिमा कहिए या प्रभु इच्छा है कि जो जागते ही राम नाम का स्मरण करते थे....

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे।।

(1/60/3)

वही शिव जी आज क्रोध सहित जागे हैं।

3. ये क्षोभ विशेष है क्योंकि साधारण प्राणी के मन में काम द्वारा उत्पन्न क्षोभ उसे काम के अधीन कर देता है। प्राणी काम–प्रबलता से, कामाग्नि से दग्ध होने लगता है और आज काम का ही काम तमाम होने वाला है। आगे शिव जी द्वारा कामदेव को भस्म करना सुनकर पार्वती जी सप्तर्षियों से कहती हैं कि......

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।।
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई।।

(1/90/6–8)

4. ये क्षोभ विशेष है क्योंकि जो स्वयं ईश्वर हैं, सर्वज्ञ हैं; जिन्हें देखने के लिए नेत्र खोलने की आवश्यकता नहीं है –

तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना।।

(1/56/4)

आज जब उन सर्वज्ञ ईश्वर के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ तो वे भी भगवन्नाम स्मरण करना भूल गए, मन ऐसा क्षुभित है कि ध्यान धारणा करने के लिए मन अनुकूल नहीं है, अतः उन्हें चारों ओर देखना पड़ रहा है। तो विचार करें कि जब मन का क्षोभ ईश्वर की ये स्थिति कर सकता है तो हम क्या हैं इसीलिए.......

पेम अमिय मंदरु बिरहु

श्री राम जन्म सिंह,
ग्राम+पो॰ - दामा, तहसील - मेंहनगर, जिला आजमगढ़ (उ.प्र.), पिन - 276204
फोन : 9839453851

श्रीराम वनवास के पश्चात भरत जी जब चित्रकूट के समीप पहुँचते हैं, तब उनको श्री रामप्रेम की साक्षात मूर्ति के रूप में देखते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं –

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

(2/238)

प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल पर्वत है, भरत जी गहरे समुद्र हैं। कृपा के सागर श्रीराम जी ने देवता और साधुओं के हित के लिए स्वयं (इस भरत रूपी गहरे समुद्र को अपने विरह रूपी मंदराचल से) मथकर, यह प्रेम रूपी अमृत प्रकट किया है। पुराणों में समुद्र मंथन की कथा आती है। इस मंथन से चौदह रत्न निकले थे –

श्री, मणि, रम्भा, बारुणी, अमिअ, शंख, गजराज।
कल्पद्रुम, ससि धेनु, धनु, धन्वतरि, विष, बाज॥

1. भरत चरित्र -

यहाँ तुलसीदास जी समुद्र मंथन का रूपक प्रस्तुत करते हैं। भरत का व्यक्तित्व समुद्र है, उससे प्रकट हुआ प्रेम का दिव्य अमृत। इस मंथन में रस्सी के रूप में वासुकि नाग की भूमिका में है कैकेयी। जैसे समुद्र में अनेक रत्न छिपे हैं, वैसे भरत के व्यक्तित्व में अगणित सद्गुण छिपे हैं। आइए भरत–चरित्र पर विचार करें– भरत–चरित्र सर्व त्याग की शिक्षा देता है। 'मानस' में अनेक उत्कृष्ट पात्रों का चित्रण हुआ है, भरत उनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। भरत चरित्र में कर्म, ज्ञान और भक्ति की जो त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है, वह अनोखी है। भरत–चरित्र समन्वय का प्रतीक है। भरत के चरित्र में ब्रह्मचारी का अविचल व्रत, गृहस्थ की कर्तव्य परायणता, वानप्रस्थी का तप और संन्यासी का सर्व त्याग सभी को उनके चरित्र में एक साथ देखा जा सकता है। साधना और सिद्धि का ऐसा एकत्रिकरण किसी भी अन्य पात्र में नहीं है। भरत के व्यक्तित्व में सत्य–शील का सामंजस्य है। सत्य सोने की तरह है तो शील पारस की भाँति। कुल मिलाकर भरत का व्यक्तित्व संतुलित व पूर्ण है।

चित्रकूट की भरी सभा में राम ने कहा "तीन काल व तीन लोक में जितने पुण्यात्मा हुए हैं, वे सब भरत से कनिष्ठ हैं –

तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥

(2/263/6–7)

मानस के अन्य पात्रों में उत्कृष्टता होते हुए भी एकांगिकता है। जब लक्ष्मण ने भ्रम वश भरत को कुटिल कुबन्धु कहा, तब राम ने उन्हें रोकते हुए बताया कि भरत के समान पवित्र और आदर्श भाई मैंने नहीं देखा। उन्हें राजमद हो ही नहीं सकता –

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।।

(2/231/8)

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।

(2/231)

भरत का यही व्यक्तित्व रामराज्य की स्थापना का कारण बनता है। हम 'रामराज्य' की कल्पना तभी कर सकते हैं जब शासक/नेता भरत जैसे त्यागी हों।

2. राज्याभिषेक की तैयारी : राम वन गमन -

अयोध्याकाण्ड साहित्यिक और भावनात्मक दोनों दृष्टियों से 'मानस' का सर्वश्रेष्ठ अंग है। इसमें भरत की गुण–गरिमा का गायन है। भरत के व्यक्तित्व का दर्शन हमें राम वन गमन के पश्चात ही होता है। यदि वन गमन की घटना न होती तो भरत के प्रेम को संसार नहीं जान पाता। अयोध्या का शृंगार किया जा रहा था, तोरण–बन्दनवार से अवध का हर भवन सजाया जा रहा था। श्रीराम सिंहासनासीन युवराज बनेंगे, पर यह समाचार कैकेयी तक नहीं पहुँचा। भरत को ननिहाल से नहीं बुलाया गया। क्या इसके पीछे कोई षड्यंत्र है? कैकेयी नरेश ने वचन लिया था कि मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। कैकेयी द्वारा वज्रपात– "अयोध्या का राजा होगा भरत, राम को वन जाना होगा।" यह भयानक और व्यथित करने वाली घटना थी। महाराज की मृत्यु के बाद वसिष्ठजी द्वारा ननिहाल से भरत–शत्रुघ्न को बुलाया गया। कैकेयी को मिला चिर अपयश, वैधव्य, पुत्र से तिरस्कार, समाज द्वारा बहिष्कार। प्रश्न उठता है– कैकेयी निन्दनीय या वंदनीय। निन्दा करने वाले हैं भरत, किन्तु राघवेन्द्र की सबसे प्रिय हैं– कैकेयी, यह सुप्रीम कोर्ट जैसा निर्णय है। भरद्वाज जी ने श्रीराम जी को बताया– हंसवाहिनी शारदा का यह काम है। उन्होंने कहा – **गई गिरा मति फेर'।** दोषी सरस्वती है, कैकेयी नहीं।

भरत ननिहाल से आकर माता कैकेयी से पूछते हैं –

कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।।

(2/159/8)

पिता की मृत्यु का समाचार सुन भरत मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। हृदय–मस्तिष्क पर भीषण आघात हुआ –

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौपेहु मोही।।

(2/160/5)

पिता की मृत्यु का कारण सुनकर उन्हें पिता मरण विस्मृत हो गया और पूरे प्रकरण में स्वयं को दोषी मानकर इस प्रकार से माता कैकेयी की भर्त्सना करने लगे। भरत कैकेयी अम्बा को धिक्कारने लगे –

जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा।।

(2/161/7 तथा 2/162/2)

अपनी माता का भवन त्याग कर भरत जी कौसिल्या माँ के कक्ष में जाते हैं और उन्हें मूर्छित–आभूषण हीन देख तथा करुण विलाप सुन शोक में डूब गए। प्रजा अनाथ हो व्यथा के सागर में डूबी पूछ रही थी क्या होगा राघव रहित अवध का? भरत महसूस कर रहे थे – **'मैं सठ सब अनरथ कर हेतू।'**

3. चित्रकूट के तपोवन को भरत का प्रस्थान -

भरत के अन्तःकरण में प्रभु राम का आवास है। माँ ने भरत को राज्य का प्रलोभन दिया, उस समय भरत रूपी गहरे समुद्र के मंथन से निकला वैराग्य। गुरु वसिष्ठ ने भी राज्य लेने का प्रस्ताव रखा, पर निराशा हाथ लगी। अलग–अलग भूमि का अलग–अलग प्रभाव होता है। अयोध्या धर्म की भूमि, लंका अहंकार की, जनकपुर ज्ञान की और चित्रकूट प्रेम की भूमि है। चित्रकूट यात्रा, चतुरंगिणी सेना देख शृंगवेर पुर के निषादराज को भ्रम हुआ कि सेना का उपयोग युद्ध है। भरत का उद्देश्य चित्रकूट में ही राज्याभिषेक करना था, इसलिए क्षत्र–मुकुट, सिंहासन सभी वस्तुएँ लेकर आए थे वास्तविकता जानने पर निषादराज को संकोच था पर भरत जी ने रथ से कूदकर निषादराज को गले लगा लिया, क्योंकि वह प्रभु का सखा है और भरत सेवक।

4. चित्रकूट में भरत-राम सम्वाद -

भरत ने श्रीराम जी से कहा– प्रभु आप मेरे माता, पिता, गुरु, स्वामी, पूज्य, हितैषी, रक्षक तथा समर्थ, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं, किन्तु मैं पापी, कुसेवक एवं दुर्गुणों से परिपूर्ण हूँ, फिर भी शरणागत हूँ। श्रीराम से भरत का स्नेह, दैन्य, करुणा तथा विवेक से परिपूर्ण वाणी मानो मूर्तिमती भक्ति की प्रतीक है। भरत की वाणी में उनकी हृदयतंत्री बज रही थी। श्रीराम जी भरत से मिलने के लिए अधीर थे, धनुष, बाण, निषंग, दुपट्टा सब फेंक कर उनको हृदय से लगा लिया। प्रभु को लौटाना था अयोध्या। भरत ने कहा मैं निर्णय करने योग्य नहीं हूँ, क्योंकि मैं सेवक हूँ। दैन्य ही जिसका बल है और मौन ही अस्त्र, भला उस विलक्षण सेनानी को हराया भी कैसे जा सकता है। जिसके प्रेम के अगाध जल में भावनाओं की तरंगें उठती रहती हैं, ऐसे महोदधि को किस साधन द्वारा पार किया जा सकता है? भरत जी के जीवन का मूल मंत्र है – **'मोरे सरन रामहि की पनही'** जैसे कछुआ अपने अण्डे से दूर रहकर मन से उसके निकट रहता है, उसी प्रकार राघवेन्द्र को भरत का स्मरण सदा बना रहता है। तभी तो मानसकार ने लिखा –

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।

(2/218/7)

कैकेयी का कर्तव्य राहु की तरह है फिर भी भरत के यश–चन्द्र पर ग्रहण नहीं लग सका, क्योंकि ग्रहण पूर्णिमा को लगता है भरत ने अपने चरित्र में पूर्णिमा आने ही नहीं दी। प्रभु का मानना है कि जो मेरे सामने मद, मोह, कपट, छल छोड़कर आते हैं, मैं उन्हें पाप से मुक्त कर देता हूँ –

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

(5/48/3)

अंत में प्रभु ने अपनी चरण पादुकाएं भरत को प्रदान कर दीं –

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥

(2/316/4)

भरत चित्रकूट से खड़ाऊँ लेकर लौटे मानो दो पादुकाएँ सीता और राम हों। अयोध्या पर स्वामित्व हृदयाराध्य की पादुका को सिंहासनासीन कर वे सेवक की भाँति राजकाज करते रहे। उनका राम के प्रति अनिर्वचनीय प्रेम था।

एक बार भक्तराज हनुमान जी को अपनी शक्ति व सेवा पर घमण्ड हो गया, शेषावतार लक्ष्मण लंका रणांगण में मूर्छित पड़े थे। संजीवनी बूटी लेकर नंदीग्राम के ऊपर रात में आकाश मार्ग से हनुमान जा रहे थे। भरत की समझ में आया कि प्रभु का विरोधी कोई राक्षस अयोध्या नष्ट करना चाहता है। भरत ने बिना नोक के बाण से उन्हें गिरा दिया। हनुमान 'हे राम' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। भरत का हृदय काँप गया, क्या यह राम के भक्त हैं? पूरी जानकारी होने पर भरत ने कहा भक्तराज आप मेरे बाण पर बैठ जाइए। मैं क्षणभर में लंका पहुँचा दूँगा। महावीर हनुमान चकित– मेरा भार सुमेरु से भी अधिक है, बाण कैसे संभाल लेगा। हनुमान परीक्षा के लिए बाण पर चढ़ गए। महा आश्चर्य। अखिल ब्रह्माण्ड नायक प्रभु राम की लीला अपरम्पार है। पर उन्होंने भरत जी से निवेदन किया कि आपके प्रताप को हृदय में धारण करके शीघ्र ही पहुँच जाऊँगा –

चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥
सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥
तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥

(6/60/6–8 तथा 6/60)

लंका विजय के बाद प्रभु पुष्पक विमान से अयोध्या आए, भरत दौड़ कर चरणों से लिपट गए। श्रीराम ने कहा वीतरागी तपस्वी उठो। राघव ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। धन्य है मूक व्रती भरत की महिमा।

'घमंड' और 'पेट' जब ये दोनों बढ़ते हैं। तब 'इन्सान' चाह कर भी किसी को गले नहीं लगा सकता।

श्रीरामचरितमानस में शिव-चरित्र

आचार्य कविता कान्त वाजपेयी, मानस एवं भागवत कथा व्यास,
रायबरेली, फोन : 9793774371

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने सर्व प्रथम याज्ञवल्क्य जी से शिव–चरित्र कहलवाया। भगवान शिव के ग्यारह रुद्र रूप हैं। शायद गोस्वामी जी ने ग्यारह रुद्रों को दृष्टिगत कर शिव चरित्र लिखा है, इस कारण हर स्थान पर ग्यारह की संख्या संज्ञान में लेने योग्य है, यथा–

1. **शिव पुराण में रुद्र** – अहिर्बुध्न्य, कपाली, शंभु, शास्ता, भव, अजपाद, चंड, विलोहित, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष (संख्या = 11)

2. **श्रीरामचरितमानस के बालकांड** में शिव चरित्र दोहा संख्या 48 से दोहा संख्या 103 तक अर्थात् 56 दोहों में (संख्या 5+6 = 11)

3. **शिव चरित्र में कमल व उसके पर्यायवाची का प्रयोग** –

1. तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि **कमलासन**।।
(1/58/7)

2. उपजेउ सिव पद **कमल** सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेह।।
(1/68/5)

3. धरी न काहूँ धीर, सब के मन **मनसिज** हरे। जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।।
(1/85)

4. जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन **मनसिज** जागा।।
(1/86/8)

5. बिकसे सरन्हि बहु **कंज** गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
(1/86/छं)

6. सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद **जलज** सीस तिन्ह नाए।।
(1/93/5)

7. अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम **सरोज** नयन भरि बारी।।
(1/96/7)

8. एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल **कमल** पतंगा।।

9. छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
(1/100/छंद)

अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद **कमल** मनु **मधुकर** तहाँ।।
(1/100/छंद)

10. दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।

का देउँ पूरनकाम संकर चरन **पंकज** गहि रह्यो।।

(1/101/छंद)

11. सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहि कियो।

पुनि गहे पद **पाथोज** मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो।।

(1/01/छंद)

उपर्युक्त स्थलों पर कमल एवं उसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग ग्यारह बार हुआ है।

4. **कामदेव** के नामों की संख्या 38 है (अर्थात् संख्या 3+8 = 11)

5. **शिव चरित्र** में राम नाम एवं उनके विशेषण 56 बार आए (अर्थात् संख्या 5+6 = 11)

6. **शिवजी** के नाम एवं उनके विशेषण 47 बार आए (अर्थात् संख्या 4+7 = 11)

7. **उमा के नाम** एवं उनके विशेषण 29 बार आए (अर्थात् संख्या 2+9 = 11)

8. **शिवजी के श्रृंगार की सामग्री** –

1. जटाओं के मुकुट पर साँपों का मौर	–	जटा मुकुट अहि मौरु साँवरा।। (1/92/1)
2. सिर पर गंगा	–	ससि ललाट सुंदर सिर गंगा।
3. कानों में साँपों के कुण्डल	–	कुंडल कंकन पहिरे ब्याला।
4. हाथों में कंगन, त्रिशूल, डमरू	–	कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा।
5. तन पर विभूति	–	तन बिभूति पट केहरि छाला।।
6. ललाट पर चन्द्रमा	–	ससि ललाट सुंदर सिर गंगा।
7. नेत्र	–	नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।
8. कन्ठ में हलाहल	–	गरल कंठ उर नर सिर माला।।
9. उर पर नरमुन्डमाला	–	गरल कंठ उर नर सिर माला।।
10. वस्त्र : वनराज चर्म	–	तन बिभूति पट केहरि छाला।।
11. उपवीत : भुजंग	–	नयन तीनि उपबीत भुंजंगा।।

(1/92/3)

इस श्रृंगार सामग्री का अंक भी 11 है।

9. **शिव चरित में हिमाचलराज** के नाम 38 बार आए हैं (अर्थात् संख्या 3+8 = 11)

10. **श्रीनारदजी द्वारा कथित शिवजी** के अवगुणों की संख्या भी ग्यारह हैं यथा –

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।।

(1/67/8)

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।

(1/67)

1. अगुन 2. अमान 3. मातृहीन 4. पितृहीन 5. उदासीन 6. सबसंशयहीन 7. जोगी 8. जटिल 9. अकाम गन 10. नग्न 11. अमंगल वेश (संख्या = 11)

11. **पार्वतीजी द्वारा कृत तप के वर्णन** में भी 11 की संख्या है यथा –

1. पद स्मरण – पति **पद सुमिरि** तजेउ सबु भोगू।। (1/74/2)
2. भोग त्याग – पति पद सुमिरि **तजेउ सबु भोगू**।।
3. चरण अनुराग – नित नव चरन उपज **अनुरागा**।
4. विदेहता – **बिसरी देह** तपहिं मनु लागा।।
5. तपरत – बिसरी देह **तपहिं मनु लागा**।।
6. फल भोग – संबत सहस **मूल फल खाये**।
7. शाक भोग – **सागु खाइ** सत बरष गवाँए।।
8. पानी – कछु दिन भोजनु **बारि बतासा**
9. उपवास – किए कठिन कछु दिन **उपबासा**
10. सूखे पत्तों का खाना– बेल पाति महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत **सोइ खाई**।।

(1/74/6)

तत्पश्चात् उपर्युक्त सभी का त्याग –

11. पुनि **परिहरे सुखानेउ परना**। उमहि नामु तब भयउ अपरना।।

(1/74/7)

12. **बालकों द्वारा शिव की बारात का वर्णन** –

1. कहिअ काह कहि **जाइ न बाता**
2. **जम कर धार** किधौं बरिआता।।
3. बरु बौराह : **<u>बरु बौराह</u>** बसहँ असवारा।
4. बसहँ असवारा : बरु बौराह **<u>बसहँ असवारा</u>**।
5. ब्याल : **<u>ब्याल</u>** कपाल बिभूषन छारा।।
6. कपाल : **<u>तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा</u>**।।
7. विभूषण छारा :
8. नगन :
9. जटिल :
10. भयंकरा :
11. **सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकटमुख रजनीचरा।**

इस प्रकार इस वर्णन में संख्या 11 ही है।

13. **नारद जी द्वारा मयना को ज्ञान उपदेश** –

1. मयना सत्य सुनहु मम बानी – ये जगदम्बा हैं
2. तव सुता भवानी है अर्थात् भव की पत्नी हैं
3. अजा – अजन्मा हैं
4. अनादि – जिसका आदि न हो
5. शक्ति – शक्ति है
6. अविनाशिनि – जिसका नाश नहीं होता
7. सदा संभु अरधंग निवासिनि – इसलिए शिवजी को अर्द्धनारीश्वर कहा जाता है
8. जग संभव – सृष्टि का प्राकट्य करती हैं
9. पालन – जगत का पालन करती हैं
10. लय कारिनि – जगत को नष्ट करती हैं तथा
11. निज इच्छा लीला वपु धारिनि – इच्छित वेष धारण करती हैं

14. **सतीजी द्वारा श्रीराम का कौतुक दर्शन** –

1. सतीं दीख कौतुकु मग जाता
2. फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा

(1 / 54 / 4–5)

3. जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना
4. सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना
5. देखे सिव बिधि विष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका।।
6. बंदत चरन करत प्रभु सेवा
7. सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप

(1 / 54)

8. देखे जँह तँह रघुपति जेते
9. जीव चराचर जो संसारा
10. अवलोके रघुपति बहुतेरे।
11. सीता सहित न वेष घनेरे।।

(1 / 55 / 1, 2 एवं 4)

इस प्रकार इस प्रसंग में भी संख्या 11 है।

15. **सती जी के तन त्याग के पश्चात शिवजी की स्थिति** –

1. जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा।।

(1 / 75 / 7)

2. जपहिं सदा रघुनायक नामा
3. जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा
4. बिगत मोह
5. बिगत मद
6. बिगत काम
7. बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि
8. सकल लोक अभिराम
9. कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना
10. कतहुँ राम गुन करहिं बखाना
11. भगत बिरह दुख दुखित सुजाना

इस प्रकार से यहाँ भी संख्या 11 है। **पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजी कृत श्रीरामचरितमानस के शिव चरित्र में ग्यारह (11) संख्या का विशिष्ट दिग्दर्शन संत कवि की आध्यात्मिक एवं विलक्षण मेधा का परिचय कराता है।**

ऐसे संत कवि का कोटिशः नमन।

सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें

सरल शास्त्री,
116 होशियारपुर, सेक्टर-51, नोएडा फोन : 9311384212

हे जनकनन्दिनी वैदेही मिथिलेशकुमारि–दुलारि तुम्हीं।
भूसुता भूमिजा अयोनिजा सीते! हो राजकुमारि तुम्हीं।।
कंचन सी काया किन्तु न था सुंदरता का अभिमान तुम्हें।
नादान 'सरल' इस बालक का सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।1।।

तुम गंगा सी पावन शीतल श्रद्धारूपा आनन्दमयी।
मन–मधुकर मुग्ध किये सेवा–नय–विनय मधुर व्यवहारमयी।।
हे शान्ति–मूर्ति सौन्दर्य–सार अर्पित तन मन धन प्राण तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।2।।

तुम राम–प्राण मन चित्त बुद्धि सौभाग्य शान्ति अनुरक्ति तुम्हीं।
तुम राम–वल्लभा प्राणप्रिया सहचरी संगिनी शक्ति तुम्हीं।।
श्रुति–शास्त्र कहें भगवान राम की भगवत्ता का सार तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।3।।

जो अगुण अलख अव्यक्त ब्रह्म उसकी अभिव्यक्ति तुम्हीं तो हो।
निष्काम निरंजन अनासक्त उसकी आसक्ति तुम्हीं तो हो।।
तुम भुक्ति–मुक्तिदा भक्तिमयी भजते कुछ भक्त अकाम तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।4।।

सम्पूर्ण जगत की संरचना करती हो सीता मात तुम्हीं।
तुम ही करतीं जग–संचालन प्राणी पालन–संहार तुम्हीं।।
इस जग का कारण–कार्य तुम्हीं हो **'प्रकृति'** पुकारे सांख्य तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।5।।

जीवों को निज वश में करके भव–सागर में भटकाती हो।
तुम कर्म–पाश से बाँध हमें मर्कट की भाँति नचाती हो।।
तुम अघटितघटनापटीयसी 'माया' कहता वेदान्त तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।6।।

तुम चतुर चितेरी विश्व–मंच भरतीं बिन तूली रंग तुम्हीं।
हे जगन्नाट्य की चतुर नटी करतीं नव रस रस–रंग तुम्हीं।।
कर रहीं सतत सुंदर अभिनय माँ! महानायिका कहें तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।7।।

संगीत सप्त स्वर, काव्य–प्राण नव रस माँ! देन तुम्हारी ही।
लीलामयि जो हम देख रहे यह लीला मधुर तुम्हारी ही।।
रावण–कुल–संहारिणि कहते रणचंडी काली काल तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।8।।

तुम शब्द रूप रस गंध स्पर्श अगुणा सगुणा षड्गुणा तुम्हीं।
तुम जननी सकल चराचर की माँ ममता करुणा क्षमा तुम्हीं।।
हे जगज्जननि जगदम्बे माँ! कहते अनुकम्पा–मूर्ति तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।9।।

इन गगन पवन पावक जल भू तत्वों में मात तुम्हीं तो हो।
रवि–राशि–तारों में तेज तुम्हीं व्यापक सर्वत्र तुम्हीं तो हो।।
मन–सिंहासन पर बिठा तुम्हें यह पूजा–अर्घ्य प्रदान तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।10।।

ऋषि मुनि ब्रह्मर्षि तपस्वी सुर माँ के ये बालक न्यारे हैं।
कर्तव्य–गगन की चादर पर सुन्दर चमकीले तारे हैं।।
हे भक्तिस्वरूपे! भक्तों की कहते गति मति रति भक्ति तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।11।।

पति–दुख में साथ गयीं वन–पथ काँटे चुन फूल बिछाती थीं।
सुख–छाया बन पल्लू झल कर प्रियतम का स्वेद सुखाती थीं।।
तुम सतीशिरोमणि नारि–जगत वंदन करता संसार तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।12।।

तुम कंद मूल फल खाकर भी दंडकवन में सानन्द रहीं।
जीवनधन का आतप हरने बन कर शीतल जल–धार बहीं।।
तुम पतिव्रता पति–अनुगामिनि कहते नारी–आदर्श तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।13।।

माँगा न किसी से आजीवन चाहत न रही किंचित तुमको।
माँगी थी केवल मृगछाला पर वह भी प्रिय के आसन को।।
निर्दोषा को त्यागा फिर भी आया न राम पर रोष तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।14।।

मैं यही माँगता माँ! तुमसे मस्तक रख तव पद–पंकज में।
तुम राम लषण कपि सहित बसो इस सेवक के मन–मंदिर में।।
ये पावन श्रद्धा–भक्ति पगे अन्तर्मन भाव प्रदान तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।15।।

हे कल्पवृक्ष–शीतल–छाये! हरतीं संतप्तों–ताप तुम्हीं।
हे सरल स्वभावे! भक्तों को देती इच्छित वरदान तुम्हीं।।
हे भक्तवत्सले! नमस्कार किंकर का बारंबार तुम्हें।
सीते माँ! कोटि प्रणाम तुम्हें।।16।।

कल न हम होंगे न गिला होगा, सिर्फ सिमटी हुई यादों का सिलसिला होगा।
जो लम्हे हैं चलो हंसकर बिता लें। जाने कल जिन्दगी का क्या फैसला होगा।